इकाई 30 विकास

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 परिचय
30.2 आधुनिकता और विकास
30.2.1 पूँजीवाद का उदय : विकास की उत्पत्ति
30.2.2 ज्ञानोदय परम्परा
30.2.3 विकास विषयक जॉर्ज लारेन के विचार
30.2.4 प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद का युग
30.2.5 साम्राज्यवाद का युग
30.2.6 नवीन पूँजीवाद की अवस्था
30.3 विकास : पुनः परिभाषित
30.3.1 विकास की क्रांतिक समीक्षा
30.3.2 संयुक्त राज्य अमेरिका का उदय और विकास का मुद्दा
30.3.3 तीसरी दुनिया का उदय और विकास की अवधारणा
30.3.4 सीमित राष्ट्र और विकास
30.3.5 'मौलिक आवश्यकताएँ' दृष्टिकोण
30.3.6 नव-उदारवादी प्राधार के भीतर विकास
30.3.7 विकास का अधिकार
30.3.8 विश्व विकास रिपोर्ट, 1991
30.3.9 विकास पर अमर्त्य सेन के विचार
30.4 सारांश
30.5 कुछ उपयोगी संदर्भ
30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है – आपको विकास की धारणा के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना। सभी अवधारणाओं की ही भाँति विकास से जुड़े भी कुछ अर्थ हैं। ये अर्थ उस तरीके में अभिव्यक्त होते हैं, जिसमें उक्त अवधारणा को समझा गया हो, साथ ही एक विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में समझने के प्रभावी अथवा प्रचलित तरीकों में भी। प्रस्तुत इकाई में हम विकास की अवधारणा को समझने का प्रयास करेंगे, जैसा कि वह समय के साथ क्रम विकसित हुआ, और उन विविध तरीकों को भी जिनमें वह समसामयिक विश्व में समझा जाता है। इस विषय में आपकी समझ बढ़ाने के लिए इकाई के अंत में पाठ्य-सामग्री की एक संक्षिप्त सूची दी गई है।

30.1 परिचय

विकास की अवधारणा को सामान्यतया आर्थिक विकास तथा लोगों के जीवन में परिवर्तनों एवं सुधारों की एक प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है। यदि कोई लोगों से पूछे कि उनके अनुसार विकास क्या है, अधिक संभावना यह है कि सर्वाधिक प्रायिक उल्लिखित तत्त्व

आर्थिक संस्थाओं एवं आर्थिक विकास के संकेतकों से संबंधित होंगे, यथा उद्योगीकरण, प्रौद्योगिक उन्नति, शहरीकरण, धन-संपत्ति एवं जीवन-स्तर में वृद्धि, आदि। नितान्त संभव है कि अधिकतर उत्तरों में, यदि स्पष्टतया नहीं तो संभवतः तुलनार्थ ही, एक संदर्भ बिन्दु के रूप में 'पाश्चात्यकरण' बार-बार आयेगा। 'पश्चिम' अथवा 'आधुनिक' से जुड़े लक्षणों के साथ विकास की पहचान, तिस पर भी, सहज ही सामान्य बोध का विषय नहीं है। इस संबंध की जड़ें स्वयं विकास की अवधारणा के विकास में ही कहीं हैं। यही संबंध है, जिसने इस शब्द की प्रभावी समझ बनाने में योगदान दिया है, और गत अनेक वर्षों में उक्त धारणा के इर्द-गिर्द विरोधों, संघर्षों तथा वाद-विवादों को भी जन्म दिया है। हम, इसी कारण, इस अवधारणा संबंधी अपनी समझ को यह स्वीकार करके आगे बढ़ा सकते हैं कि विकास की अवधारणा ने विशिष्ट ऐतिहासिक प्रसंग में आकार लिया और समय के साथ ही वह विकसित हुई।

मानव समाज ने सदा ही परिवर्तन का अनुभव किया है और सामाजिक-राजनीतिक संगठन एवं आर्थिक कार्यकलापों के सरल से जटिल रूपों तक आगे बढ़ा है। विकास की अवधारणा आर्थिक विकास तथा सामाजिक एवं राजनीतिक प्राधारों के एक विशिष्ट रूप से संबंध रखती है। इस अवधारणा ने सामन्तिक सामाजिक-आर्थिक प्राधारों के विध्वंस तथा पूँजीवाद के विकास के संदर्भ में आधुनिक काल में आकार लिया। आगामी भागों में हम इस अवधारणा के क्रम-विकास पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे कि किस प्रकार यह आधुनिक यूरोप में जन्मी और लोगों व राष्ट्रों के बीच संबंधों को निश्चित करते एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में फैल गयी। अगले ही भाग में पाश्चात्य आधुनिकता के एक पहलू के रूप में विकास की अवधारणा के विधिष्ट सम्पृक्तार्थों को लिया जाएगा। हम यह भी देखेंगे कि किस प्रकार इस सम्पृक्तार्थ की शेष विश्व के लिए महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक शाखा-प्रशाखाएँ थीं। अन्त में, हम एक भाग उन तरीकों पर नज़र डालने के लिए रखेंगे, जिनमें कि विकास की अवधारणा पर हाल के वर्षों में वाद-विवाद हुआ है, ताकि उसे समानता और लोकतंत्र के अधिक सुसंगत बनाया जा सके।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) विकास को आमतौर पर किस प्रकार समझा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

30.2 आधुनिकता और विकास

30.2.1 पूँजीवाद का उदय : विकास की उत्पत्ति

विकास की अवधारणा को इस प्रकार देखा जाता है, जैसे कि वह पूँजीवाद के उदय के साथ ही प्रकट हुई हो। पूँजीवाद के उदय से पूर्व यहाँ कृषिक समाज हुआ करते थे, जो

सामन्तिक संबंधों द्वारा नियंत्रित होते थे। समाज पदानुक्रमित था और किसी की जन्म पदस्थिति ही सामाजिक पदानुक्रम में उसकी स्थिति को निर्धारित करती थी। सामन्तिक स्वामित्व संबंध लाभ पर कम ज़ोर देते थे और मुख्यतः आत्मनिर्भरता, भरण-पोषण और पारस्परिकता द्वारा नियंत्रित होते थे। आर्थिक विकास, उत्पादन परिणाम, लाभ, व्यापार की स्वतंत्रता आदि पर अपने ज़ोर के साथ पूँजीवाद के उदय ने वे भौतिक दशाएँ प्रदान कीं, जिनमें रहकर विकास की अवधारणा ने आकार लेना शुरू कर दिया।

30.2.2 ज्ञानोदय परम्परा

इसके साथ ही, समय की बौद्धिक परम्परा, यथा ज्ञानोदय परम्परा ने, जैसा कि उसको आमतौर पर कहा जाता है, व्यक्ति की अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया। व्यक्ति को, इस नई बौद्धिक परम्परा के भीतर, माना जाने लगा कि जैसे वह तर्क की मानसिक शक्ति रखता है, और युक्तियुक्त निर्णयों को लेने की क्षमता भी रखता है। इस विचारशील व्यक्ति की नियति अब दैवी शक्ति द्वारा निहित नहीं रही थी, न ही वैयक्तिक बंधन को, इसी कारण, अब उन संबंधों के भीतर ही सीमित रखना था जो कि सामन्तिक समाज द्वारा निर्धारित थे। इस बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति ने, जो इन धीमे व अपेक्षाकृत सुस्त सामाजिक-आर्थिक संबंधों के साथ-साथ सामाजिक व राजनीतिक संगठन के पदानुक्रमित आधार के प्रति भी संदेहकारी था, बेड़ियों को तोड़ मुक्त होने के लिए संघर्ष किया।

स्वतंत्र उद्यम और लाभ के सिद्धांत पर आधारित पूँजीवाद ने प्रगति और विकास संबंधी विचारों का पोषण किया। अपूर्व भौतिक प्रगति और लाभार्जन पर ज़ोर देते हुए, यह तर्कसंगत ही था कि सामन्तिक संबंधों को गुप्त रूप से हानि पहुँचाई गई, और साथ ही, शासन के माकूल प्राधार ढह गए। इस ढहाव ने, जो कि वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं विद्यमान सामन्तिक संस्थाओं से स्वायत्त शासन हेतु एक लम्बे चले राजनीतिक संघर्ष के बाद ही संभव हुआ था, स्वच्छंदता, स्वतंत्रा एवं लोकतंत्र की एक उदारवादी धारणा संबंधी राजनीतिक आदर्शों को भी जन्म दिया। बहरहाल, विकास की अवधारणा का जन्म चूँकि पूँजीवाद के साथ ही हुआ, वह मुख्य रूप से प्रगति के साथ ही पहचानी गई, और प्रगति के रूप में विकास के पहिले पहल स्पष्ट वर्णन सूत्र डेविड रिकार्डो एवं ऐडम स्मिथ जैसे विख्यात् राजनीतिक अर्थशास्त्रियों की पुस्तकों में पाये गए।

30.2.3 विकास विषयक जॉर्ज लारेन के विचार

जोर्ज लारेन उल्लेख करते हैं कि विकास की अवधारणा न सिर्फ़ पूँजीवाद के क्रम-विकास के साथ गहरे जुड़ी है, पूँजीवाद का प्रत्येक चरण विकास विषयक अवधारणाओं को एक विशिष्ट शृंखला-धारक के रूप में भी देखा जा सकता है (जोर्ज लारेन, 'इन्ट्रोडक्शन', *थिअरीज़ ऑफ़ डिवैलॅपमण्ट*, पॉलिटि प्रैस, कैम्ब्रिज, 1989)। लारेन पूँजीवाद को 1700 से तीन प्रमुख चरणों में विकसित हुए के रूप में मानते हैं और प्रत्येक चरण हेतु विकास के सुसंगत सिद्धांतों की पहचान करते हैं। ये तीन चरण हैं : (i) प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद का युग (1700-1860), (ii) साम्राज्यवाद का युग (1860-1945) और (iii) नवीन पूँजीवाद (1945-1980)।

30.2.4 प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद का युग

प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद की पहचान रही – नए औद्योगिक पूँजीवादी वर्गों के संघर्ष, ताकि वे सामन्तवाद के अन्तिम अवशेषों से स्वयं को मुक्त कर सकें और राजनीतिक सत्ता हासिल कर सकें। यह वो वक्त भी था, जब पूँजीवाद, ब्रिटेन में अपने उद्गम से, बाज़ारों की तलाश

में विश्व भर में फैलना शुरू हो गया। कार्ल मार्क्स बताते हैं कि विकास के अपने प्रथम पड़ावों में औद्योगिक पूँजी ने बलपूर्वक बाज़ार सुनिश्चित करने का प्रयास किया, यथा औपनिवेशिक तरीके से। सैद्धांतिक राजनैतिक अर्थव्यवस्था, जिसका प्रतिनिधित्व ऐडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो ने किया, का मानना था कि पूँजीवाद ही उत्पादन का परिशुद्ध और परिपूर्ण रूप है, यथा यह विकासार्थ सर्वाधिक प्रेरणाप्रद दशाएँ प्रदान कर सकता है। उनका विश्वास था कि अन्तरराष्ट्रीय व्यापार उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है। पूँजीवाद की परिशुद्धता तथा संघर्ष-मुक्त प्रत्ययीकरण, तथापि, तब पुनर्विचार के अधीन हो गए जब कामगार-वर्ग संघर्ष उभरकर आये। इन्हीं संघर्षों के प्रसंग में ही कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंजिल ने पूँजीवाद संबंधी अपनी आलोचना को प्रस्तुत किया। मार्क्स और एंजिल ने यह स्वीकार करते हुए कि पूँजीवाद इतिहास में उत्पादन के सर्वाधिक उन्नत तरीके के रूप में एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी, इसी को उत्पादन का प्राकृतिक और परिशुद्ध रूप मानने से इंकार किया। उन्होंने कामगार-वर्ग संघर्षों में पाया कि पूँजीवाद में आंतरिक विरोध की अभिव्यक्ति है और उत्पादन के एक अधिक उन्नत तरीकों द्वारा हस्तांतरण एवं प्रतिस्थापन की संभावना भी।

30.2.5 साम्राज्यवाद का युग

द्वितीय चरण अर्थात् साम्राज्यवाद के युग (1860-1945) की पहचान रही – विशाल निगमों द्वारा बाज़ार का एकाधिकारिक नियंत्रण, औद्योगिक केन्द्रों से पूँजी का आसपास के क्षेत्रों को निर्यात, कच्चा-माल उत्पादन एवं पूँजी संचय दोनों पर परवर्ती का नियंत्रण, तथा उत्पादन के प्रबल तरीके के रूप में पूँजीवाद का सुदृढ़ संस्थापन। इस चरण के दौरान विकास के नव-शास्त्रीय सिद्धांत ने प्रमुखता प्राप्त कर ली। इसने इस आश्वासन के साथ काम किया कि उत्पादन के पूँजीवादी तरीके की जड़ें मज़बूत हैं और उसमें अपने आप को बनाये रखने की एक अन्तर्निहित ऊर्जा है। नव-शास्त्रीय सिद्धांतियों ने बाज़ार को परिपूर्ण स्वरूप लिया, और इसे कायम रखने वाली प्रक्रियाओं से जुड़े रहे, यथा क्या पैदा किया जाए, कितना पैदा किया जाए, और किस कीमत पर, आदि तय करने संबंधी सूक्ष्म अर्थशास्त्र से। इसी बीच, मार्क्सवादियों ने पूँजीवाद संबंधी अपनी परंपरागत समीक्षा को विस्तार प्रदान करने का प्रयास किया। रोज़ा लक्ज़मबर्ग, बुखारिन, हिल्फर्दिंग तथा लेनिन ने यह मानते हुए कि पूँजीवाद के अन्तर्निहित लक्षणों ने विकास में योगदान दिया, अपनी सामाजिक व्यवस्था में उपनिवेशित देशों को स्थान दिया। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि जब तक औपनिवेशिक बेड़ी नहीं टूट जाती, उपनिवेशित देशों की तरक्की रुकी ही रहेगी। मंदी का ताँता जो 1930 में आर्थिक संकट के शिखर पर जा पहुँचा, के प्रसंग में नव-शास्त्रीय सिद्धांत को जॉन मेनार्ड कीन्स के विचारों ने झिंझोड़ कर रख दिया, जिन्होंने इस बात की वकालत की कि राज्य हस्तक्षेप मंदी के प्रभावों को सुधारने के लिए आवश्यक है।

30.2.6 नवीन पूँजीवाद की अवस्था

नवीन पूँजीवाद की अवस्था 1945 में शुरू हुई और उसे दो चरणों में विभाजित के रूप में देखा जा सकता है – पूवर्ती जो 1966 में समाप्त हुआ और परवर्ती जो 1980 तक चलता रहा। इस अवस्था की पहचान थी – आधुनिक उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन और 1966 तक की अवधि आर्थिक विस्तारण एवं बढ़ते लाभों द्वारा अभिलक्षित रही। यह अवधि अनौपनिवेशीकरण प्रक्रिया, एवं विश्व भर में नए-नए स्वतंत्र हुए देशों का उदय, तथा परवर्ती की कार्यसूची में सामाजिक प्रगति एवं आर्थिक विकास के मुद्दों का तदोपरांत प्रचलितीकरण आदि के लिए भी महत्त्वपूर्ण रही। इस संदर्भ में *माडर्नाइज़ेशन थिअरीज़* (रॉस्टॉ, ऑस्लित) ने विकास प्रक्रिया को पारंपरिक (सामन्तिक) समाज से आधुनिक अथवा औद्योगिक समाज की ओर अवस्थांतर गमन के रूप में स्पष्ट किया। ऐतिहासिक रूप से, यह अवस्थांतर गमन

पहिले-पहल विकसित देशों में हुआ और दूसरों से उम्मीद की गई कि परिवर्तनों के इन्हीं प्रतिमानों का अनुसरण करें।

इस दौर में मार्क्सवादी सिद्धांतों ने औपनिवेशिक बेड़ियाँ टूटने के बाद भी नए-नए स्वतंत्र हुए देशों में अल्पविकास हेतु कारकों को समझने एवं स्पष्ट करने का प्रयास किया। तदनुसार, *थिअरी ऑफ़ इम्पिरिअलिज़्म* ने तीसरी दुनिया के समाजों में पूँजीवाद के प्रचलितीकरण के आंतरिक प्रभावों की अच्छी छानबीन की। पॉल बरान का तर्क है कि इन देशों में साम्राज्यवादी शक्तियों ने स्थानीय अल्पतंत्रों से गठजोड़ कर लिया और परिणामस्वरूप अत्यावश्यक आर्थिक संसाधनों को संचय एवं विकास से बचाकर कुछ तो महानगरों में अनुचित रूप से स्थानांतरित कर दिया गया और कुछ को विलासितापूर्ण उपभोग में उड़ा दिया गया। साम्राज्यवादी देश, इन सिद्धांतों के कथनानुसार, मूलतः अल्पविकसित देशों के उद्योगीकरण के खिलाफ हैं और सत्ता में पुराने शासक वर्ग को कायम रखने का प्रयास करते हैं। 1966 तक नवीन पूँजीवाद की अवस्था एक नए दौर में प्रवेश कर गई, जिसकी पहचान थी – आर्थिक विकास का धीमा पड़ना और लाभ की गिरती दर। इस दौर में नव-उदारवादियों (उदाहरणार्थ, मिल्टन फ्रीडमैन) ने कीन्सवादी नीतियों की कड़ी आलोचना शुरू कर दी, यह आरोप लगाते हुए कि राज्य का हस्तक्षेप बहुत अधिक है और कल्याणकारी नीतियों के समर्थन में वह भारी कराधान से विकास को धीमा करता है।

लैटिन अमेरिकी देशों में, **अधीन राष्ट्र सिद्धांत** राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्गों की उदारवादी भूमिका के विषय में संशयवादी थे और यह कहते थे कि तीसरी दुनिया में उद्योगीकरण प्रक्रियाएँ ही साम्राज्यवादी पैठ की माध्यम हैं और अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भरता को जन्म देती हैं। विशेष रूप से आँद्र गुंद्र फ्रैंक ने मार्क्सवादी और उदारवादी सिद्धांतों पर आपत्ति प्रकट की, जो कि दोनों यह दावा करते थे कि पूँजीवाद सभी जगह विकास को बढ़ावा देने में सक्षम उत्पादन का एक तरीका है। फ्रैंक ने उक्त धारणा को निरस्त किया और दृढ़तापूर्वक कहा कि सोलहवीं शताब्दी से लेकर अब तक लैटिन अमेरिकी देशों के निरन्तर अल्पविकास के लिए दोष पूँजीवाद पर ही है। फ्रैंक पूँजीवाद को एक ऐसी विश्व व्यवस्था मानते हैं, जिसके भीतर महानगरीय केन्द्र अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार क्रियाविधि के माध्यम से आश्रित देशों से आर्थिक अधिशेषों के सम्पत्तिहरण का प्रबंध कर लेते हैं, जिससे कि पूर्ववर्ती में विकास और परवर्ती में अल्पविकास को बढ़ावा मिलता है। तीसरी दुनिया के देश इसीलिए अल्पविकासित हैं कि वे विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर पराश्रित हैं। इस प्रकार, विकास केवल तभी हो सकता है, जब किसी समाजवादी क्रांति का सहारा लेकर कोई देश इस व्यवस्था से बाहर निकले।

विकास सिद्धांत, जो 1970 के दशक में सामने आये, फ्रैंक का प्रभाव दर्शाते हैं, खासकर समीर अमीन एवं ए. इमेन्युएल कृत *थिअरी ऑफ़ अनइक़्वल एक्सचेन्ज* तथा आई. वार्लस्टीन कृत *वर्ल्ड सिस्टम थिअरी*। वार्लस्टीन के अनुसार, विश्व व्यवस्था के भीतर सभी देश स्पष्टतः एक साथ विकसित नहीं हो सकते थे, कारण यह व्यवस्था असमान केन्द्रिक एवं परिधीय क्षेत्रों को साथ लेकर चलने के आधार पर ही काम करती है। एक रोचक लक्षण, जो कि वार्लस्टीन आगे बताते हैं, यह है कि एक परिधीय अथवा एक अर्ध-परिधीय देश होने की भूमिका तय नहीं है। केन्द्रिक देश तथा परिधीय देश अर्ध-परिधीय इत्यादि बन सकते हैं। तथापि जो निश्चित है, वो है विश्व व्यवस्था की असमान प्रकृति। (पूँजीवादी विकास एवं विकास सिद्धांतों की अवस्थाओं के विषय में विस्तार से पढ़ने के लिए देखें – जोर्ज लारेन, 'इण्ट्रोडक्शन', लारेन कृत *थिअरीज़ ऑफ़ डिवैलॅपमण्ट* में)

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) पूँजीवाद के उदय और विकास की अवधारणा के बीच संबंधों को प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) विकास विषयक जोर्ज लारेन के विचारों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) ए.जी. फ्रैंक, समीर अमीन तथा आई. वार्लस्टीन ने पूँजीवादी विकास का किस प्रकार प्रत्ययीकरण किया है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

30.3 विकास : पुनः परिभाषित

ऐसे समय जब पश्चिमी देशों में विद्वत्जन पूँजीवाद में विकास (प्रगति) हेतु संभावना की पुष्टि करने का प्रयास कर रहे थे, अथवा मार्क्सवादी सिद्धान्तियों के मामले में, पूँजीवाद के भीतर गतिवाद और विरोध दोनों को देखते हुए, कुछ विचार-सूत्र विकास की अवधारणा को पुनर्परिभाषित करने लगे। हमने पिछले भाग में देखा कि अधीन-राष्ट्र सिद्धांती और विश्व्य व्यवस्था विचारधाराएँ यह बताती हैं कि आधुनिक विश्व में 'विकास' का मतलब रहा है – राष्ट्रों व लोगों के बीच असमान संबंधों का विकास।

30.3.1 विकास की क्रांतिक समीक्षा

विकास संबंधी एक अधिक उग्र समालोचना 1970 के दशक में उभरनी शुरू हुई। यह समालोचना इस मूल धारणा से शुरू हुई कि अपने वर्तमान प्रयोग में विकास अति जटिल रूप से पूँजीवादी विकास एवं विस्तार से जुड़ा है। पूँजीवादी विकास ऐतिहासिक रूप से कुछ ही देशों में समृद्धि के संकेंद्रण एवं दूसरों के लिए दरिद्रता में परिणत हुआ है। इस समालोचना ने विकास की अवधारणा को संज्ञान लिया, जिसने इसे अनन्य रूप से पूँजीवादी विकास के साथ पहचाना, और इस सिद्धांत के साथ भी कि विकास का एक ही रास्ता है, जो सभी के द्वारा अपनाया जाए।

आर्तुरो एस्कोबार, वुल्फ़गैंग सैश एवं गस्टावो एस्तेवा बताते हैं कि (पूँजीवादी) विकास एवं आधुनिकीकरण के साथ प्रबल प्रामाणिकता में 'विकास' का जुड़ना द्वितीय विश्व-युद्ध पश्चात् नए-नए स्वतंत्र हुए देशों में राष्ट्र-निर्माण की एक प्रभावी विचारधारा बना रहा। पूरी युद्धोपरांत अवधि में विकास के अर्थों एवं उद्देश्यों को जिस प्रकार इन देशों में समझा गया, विकास की उस अवधारणा से मुक्त नहीं हो सके जो कि 16वीं शताब्दी में ही जन्म ले चुकी थी। वुल्फ़गैंग सैश इसको बड़े ही सुबोध तरीके से प्रस्तुत करते हैं जब, 1990 के दशक में लिखते हुए, वह कहते हैं कि पिछले चालीस वर्षों को 'विकास का युग' कहा जा सकता है। तट की ओर जहाजियों का मार्गदर्शन करते एक ऊँचे प्रकाश-स्तंभ की माफ़िक, विकास ही वो विचार था जिसने उदय होते राष्ट्रों को औपनिवेशिक अधीनता से मुक्त होने के बाद स्वंभू राष्ट्रों के रूप में उनकी यात्रा में अपनी स्थिति का ज्ञान कराया (वुल्फ़गैंग सैश द *डिवैलॅपमण्ट डिक्शनरी*, 1992, पृ.1)। नए राष्ट्रों द्वारा विकासार्थ इस खोज ने, बहरहाल, उन्हें विश्व व्यवस्था के पदानुक्रम से मुक्त करने के लिए कुछ नहीं किया, जो कि पूँजी की तर्कशक्ति द्वारा ही लायी और कायम की गई थी। स्वतंत्रता के बाद विकास की अवधारणा का तदनुसार मतलब वह विकास ही रहा, जो एक विश्व-पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सही बैठे।

30.3.2 संयुक्त राज्य अमेरिका का उदय और विकास का मुद्दा

यह उक्त कारण से ही महत्त्वपूर्ण है कि स्वतंत्रता के शीघ्र पश्चात् ही इनमें से अधिकांश देश, जो विकास के रास्ते पर चले, 'अल्प विकसित' की श्रेणी में आ गए। द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त होते-होते संयुक्त राज्य अमेरिका ने विश्व में एक दुर्जेय केन्द्रिकता हासिल कर ली। अपनी स्थिति स्पष्ट और बंधनकारी बनाने के लिए अमेरिका ने नए राष्ट्रों के साथ प्रभुत्व स्थापन एवं परोपकार संबंधी अपने व्यवहार को सटीक शब्दों में प्रस्तुत किया। तदनुसार, 20 जनवरी 1941 को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अमेरिका के राष्ट्रपति का पद भार संभाला और अल्पविकसित क्षेत्रों के सुधार हेतु अपनी वैज्ञानिक उन्नतियों एवं औद्योगिक प्रगति के लाभों को उपलब्ध कराने के लिए एक ठोस नया कार्यक्रम बनाये जाने, की घोषणा की। गस्टावो एस्तेवा का कहना है कि ट्रूमैन की नीति संबंधी इस उद्घोषणा के साथ ही मानवजाति के एक विशाल समूह, जो कि पहले उपनिवेशित देश थे, को 'अल्पविकसित' का लेबल लगे आवरण के अंतर्गत रख दिया गया (गस्टावो एस्तेवा, 'डिवैलॅपमण्ट', वुल्फगैंग सैश संपादित *डिवैलॅपमण्ट डिक्शनरी* में, पृ. 8-9)। इस लेबल ने न सिर्फ एक नए अधीनीकरण हेतु नए-नए स्वतंत्र हुए देशों को दोषी ठहराया, बल्कि उसने पूँजीवादी विकास की इमारत पर खड़ी एक पदानुक्रमित विश्व व्यवस्था के जारी रहने की पुष्टि भी की।

30.3.3 तीसरी दुनिया का उदय और विकास की अवधारणा

सत्तर के दशक के साथ ही 'तीसरी दुनिया' का एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक गुट के रूप में उद्गमन हुआ, जिसने किसी भी विचारधारा-विशेष गुट के प्रति राजभक्ति से बचकर चलना पसंद किया और न तो पूँजीवादी, न ही समाजवादी विकास-पथ को स्वीकार किया। नए

सामाजिक आन्दोलनों ने, जो कि दुनिया भर में उठ खड़े हुए, विकास के एक ऐसे एकाधिक मार्ग पर चलने का प्रयास करते हुए विकास की विद्यमान नीतियों पर सवाल करने शुरू कर दिए, जहाँ स्थानीय भूभागों की आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं को ध्यान में रखा जा सकता था। नए सामाजिक आन्दोलनों, यथा पर्यावरण, कर्मचारी वर्ग, नारी आन्दोलन आदि, ने ध्यान इस तरीके से आकृष्ट करने का प्रयास किया कि जिससे विद्यमान विकास प्रतिमान जनता के विशाल वर्गों अमहत्त्वपूर्ण माने जाने में परिणत हुए, अथवा जनता के विभिन्न वर्गों को एक असमान तरीके से शामिल कर लिया। विकास की विद्यमान सामाजिक व्यवस्थाओं में प्रतिस्पर्धा होने लगी। विकास प्रतिमानों का लोकतंत्रीकरण दो स्तरों पर करने का प्रयास किया गया : (i) देशों के भीतर ही और (ii) एक अधिक समतावादी आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को प्रोत्साहन देने के लिए देशों के बीच, जहाँ देशों के गत ऐतिहासिक आधिपत्य पर नियंत्रण रखा जा सके और प्रत्येक व्यक्ति का विकास राष्ट्र एवं प्रत्येक निष्पादित किया जा सके।

आगे के भागों में हम विकास सिद्धांत के भीतर कुछ सूत्रों पर नज़र डालेंगे, जिन्होंने विकास की अवधारणा को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ सूत्र संयुक्त राष्ट्रसंघ में विकास की बदलती अवधारणा से उभरे हैं, जिनको कि 'विकास का अधिकार' संबंधी संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा द्वारा 1989 में चरमोत्कर्ष प्राप्त हुआ।

30.3.4 सीमित राष्ट्र और विकास

ऐड्रियन लैफ़ित्वच के अनुसार, नए राष्ट्रों के आगमन के साथ ही संगठन के राजनीतिक संतुलन में बदलाव लाते हुए संयुक्त राष्ट्र की विकास विषयक सोच में परिवर्तन साठ के दशक से ही स्पष्ट हुआ। ये राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ की नीतियों के भीतर ही विकास का ध्यान–केन्द्र आय और वृद्धि से 'सामाजिक विकास' की ओर मोड़ देने में सफल रहे।

सामाजिक विकास का अनिवार्यतः अर्थ है – शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, आय वितरण, सामाजिक-आर्थिक व लिंगभेद समानता तथा ग्रामीण कल्याण जैसे क्षेत्रों में सुधार। सामाजिक विकास का अर्थ विकास की एक कहीं अधिक उग्र और आमूल उन्मूलनवादी संकल्पना हो गया, जिसमें प्रमुख परिसम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण, धन-सम्पत्ति का पुनर्वितरण (जैसे कि भूमि सुधारों में) तथा विकास के साधन व साध्य दोनों के रूप में राजनीतिक निर्णयन् में जन-भागीदारी (ऐड्रियन लैफ़ित्वच, *स्टेट्स ऑफ डिवैलॅपमण्ट*, 2000, पृ. 41)।

साठ के दशकांत तक एक चिंतन के प्रभावशाली सूत्र ने विकास की आवश्यकता को सामाजिक विकास और सामाजिक न्याय हेतु वृहत्तर विषय के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया। यह लगातार महसूस किया जा रहा था कि विकासशील देशों में विकास असमानताओं को कम नहीं कर रहा था। बल्कि लगता था कि वह विद्यमान असमानताओं को कायम रखे थे और यहाँ तक कि उन्हें बढ़ा भी रहा था। तदनुसार, लाभों के एक न्यायसंगत वितरण वाले सामाजिक विकास में तत्कालीन संबद्ध शैक्षिक सिद्धान्तियों की कार्य-शक्तियाँ शामिल थीं। ब्रिटिश विकास अर्थशास्त्री डडली सीअर्स ने, उदाहरण के लिए, साठ के दशकोत्तर से लेखों की एक शृंखला में, विकास को सिर्फ़ वृद्धि के साथ जोड़े जाने पर सवाल उठाना शुरू कर दिया। उन्होंने ग़रीबी, बेरोज़गारी और असमानता पर विकास के प्रभाव को खोजते हुए उसके 'परिणामों' पर ध्यान केन्द्रित किया। सीअर्स इस प्रकार विकास के मायने और मापने को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास कर रहे थे, ताकि ग़रीबी और असमानता दोनों को घटना तथा रोज़गार बढ़ाना उसमें शामिल किया जा सके। इस प्रकार की बातों से यह धारणा पनपी कि विकास में वो शामिल हैं, जिन्हें 'बुनियादी ज़रूरतें' कहा जाता है, और इसको उस सीमा तक मापा जाता है, जहाँ तक कि वह 'समुदायों और व्यक्तियों की प्राथमिक आवश्यकताओं' की पूर्ति करता है।

30.3.5 'मौलिक आवश्यकताएँ' दृष्टिकोण

विकास हेतु, मौलिक आवश्यकताएँ दृष्टिकोण, इस प्रकार व्यक्ति के सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास हेतु अवसर प्रदान करना ही है। मौलिक आवश्यकताओं में इसीलिए 'आत्म-निर्णयन्, आत्म-विश्वास, राजनीतिक स्वतंत्रता एवं सुरक्षा, निर्णयन् में भागीदारी, राष्ट्रीय व सांस्कृतिक पहचान, और जीवन व कार्य में उद्देश्य का एक भाग हेतु आवश्यकता' शामिल थे। मौलिक मानवीय आवश्यकताओं की परिभाषा में पाँच मुख्य क्षेत्र आते थे : पारिवारिक उपभोग हेतु बुनियादी चीज़ें (खाद्य, वस्त्र, आवास समेत); मौलिक सेवाएँ (प्राथमिक एवं प्रौढ़ शिक्षा, जल, स्वास्थ्य रक्षा व यातायात); निर्णयन् में भागीदारी; मौलिक मानवाधिकारों की पूर्ति; तथा उत्पादकारी रोज़गार (परिवार की उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु पर्याप्त आय उत्पन्न करना) (ऐड्रियन लैफ़ित्वच, पृ. 44-47)।

30.3.6 नव-उदारवादी प्राधार के भीतर विकास

अस्सी के दशक में विकास प्रक्रिया और लक्ष्य, दोनों के रूप, प्रचलित नव-उदारवादी विचारों के आधार पर निर्धारित किए जाने लगे। इन विचारों ने सुझाया कि आर्थिक स्वतंत्रता, मुक्त बाज़ार, निजी-क्षेत्र पहलकारियाँ तथा विनियमों में कटौती उद्यमशील कार्यशक्तियों को खोलने के लिए परिस्थितियाँ और प्रोत्साहन प्रदान करेंगी, जिसके द्वारा साठ व सत्तर के दशक की वे धारणाएँ अस्वीकार हो जायेंगी जो मौलिक मानवीय आवश्यकताओं के नियोजन, वितरण और प्रावधान में राज्य हेतु एक भूमिका तलाशती थीं। विकास विषयक इस सोच ने 'आर्थिक विकास की प्रमुखता' का फिर से दावा किया, बजाय सामाजिक समाज अथवा ग़रीबी उन्मूलन के, यह तर्क देते हुए कि आगे चलकर विकास ही ग़रीबी के लिए उत्तरदायी होगा। अस्सी का दशक समाप्त होते-होते, तथापि, यह स्पष्ट हो गया कि सामाजिक विकास और वितरणकारी भूमिका से राज्य के पीछे हटने से मूल खाद्य मूल्य में वृद्धियों के साथ-साथ चिकित्सीय एवं शैक्षणिक सेवाओं के संबंध में भी ग़रीबों पर भारी मार पड़ी।

30.3.7 विकास का अधिकार

इसी बीच, 4 दिसम्बर 1989 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा *विकास का अधिकार* अंगीकार कर लिया गया। इस अधिकार ने, उपेन्द्र बक्शी के अनुसार, न सिर्फ मानवाधिकारों के यथार्थ सार-तत्त्व को समाविष्ट किया, बल्कि उसने मानवाधिकारों की नयी तलाश हेतु एक उर्वर आरंभिक आधार भी प्रदान किया है, जो कि एक समतावादी विश्व व्यवस्था हेतु आधार बनाता है। विकास का अधिकार आत्मनिर्णयन् एवं सम्प्रभुता के अधिकार का परिसंपुटन करता है, और दावा करता है कि सभी अधिकार – नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक – समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और समान रूप से ही उन्हें प्रोत्साहन एवं संरक्षण दिया जाना चाहिए। इसमें यह अन्वितार्थ भी है कि अंतरराष्ट्रीय शांति व सुरक्षा विकास के अधिकार हेतु सहायक स्थितियों को पैदा करने के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं। अवसर की समानता हेतु आवश्यकता की अधिकार-माँग करते हुए, घोषणा का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है – अधिकारों के स्रोत और विषय के रूप में मानवोचित व्यक्ति पर उसका ज़ोर दिया जाना ही है। व्यक्ति ही इस विकास प्रक्रिया का मुख्य विषय था, और विकास नीति ऐसी हो जो उसे ही मुख्य भागीदार एवं मुख्य हिताधिकारी बनाये।

निम्नलिखित अभ्यन्तर विचार, जिनमें विकास का अधिकार भी शामिल है, विकास की अवधारणा में कुछ आमूल परिवर्तनों का संकेत करते हैं : (a) उक्त घोषणा विकास के अधिकार को प्रभावतः सभी मानवोचित व्यक्तियों का, सभी जगह, और सम्पूर्ण मानव जाति

का अधिकार बनाती है, ताकि वे अपनी अन्तः शक्ति को प्रयोग कर सकें। (b) यह अधिकारों के स्रोत और विषय के रूप में मानवोचित व्यक्ति की निश्चितता की अधिकार-माँग करती है। (c) यह विकास-पथ के पुनर्मानचित्रण द्वारा एक न्यायसंगत मानव समाज के गठन को लक्ष्य बनाती है। (d) इस घोषणा में अन्तर्निहित सम्पूर्ण मानव जाति के कर्त्तव्य संबंधी अवधारणा भी है, ऐसी स्थितियाँ पैदा करने और कायम रखने हेतु संघर्ष जहाँ सच्चा मानवीय, सामाजिक एवं सभ्यतापूर्ण विकास संभव हो। (e) तब, साथ ही, यह राज्य का कर्त्तव्य है कि ऐसी परिस्थितियों को जन्म दे, जिनमें मानवोचित व्यक्ति अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का प्रयोग/निर्वहन कर सके (देखें उपेन्द्र बक्शी, 'द डिवैलॅपमण्ट ऑफ़ द राइइट् टु डिवैलॅपमण्ट', ज़ान्यू सिमोनिदे (सं.) कृत *ह्यूमन राइट्स : न्यू डाइमैन्शन्ज़ एण्ड चैलेन्जेज़,* ऐशगेट, डार्टमाउथ, 1998)।

30.3.8 विश्व विकास रिपोर्ट, 1991

विकास संबंधी इस व्यापक दृष्टिकोण के पदचिह्न **विश्व विकास रिपोर्ट, 1991** में देखे जा सकते हैं। इस रिपोर्ट ने विकास को एक तो 'आर्थिक विकास' के रूप में जिसमें उन जीवन मानकों में एक सतत वृद्धि शामिल है, जिनमें भौतिक उपभोग, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण रक्षा शामिल हैं, और एक वृहत्तर अर्थ में अन्य महत्त्वपूर्ण एवं संबद्ध सहजगुणों के साथ ही अवसर की समानता, राजनीतिक स्वतंत्रता एवं नागरिक अधिकारों को शामिल किए जाने के रूप में परिभाषित किया। विकास के समग्र उद्देश्य को इसी कारण लिंग भेद, नृजातीय समूहों, धर्मों, प्रजातियों, क्षेत्रों, व देशों से परे आर्थिक, राजनीतिक, एवं लोगों के नागरिक अधिकारों को बढ़ाने के रूप में देखा गया (*विश्व बैंक,* 1991,31)।

अब तक की चर्चा में हमने देखा कि विकास की परिभाषा अब आर्थिक विकास तक सीमित नहीं रही है। इसमें सामाजिक एवं मानवीय विकास शामिल करने के लिए इसको विस्तार प्रदान कर दिया गया है। इसने अपने कार्यक्षेत्र में विकास की एक और अवधारणा को शामिल कर लिया है, जो कि एक लोकतंत्र का परिणाम है और जन-भागीदारी के माध्यम से उसे स्थापित भी करने का प्रयास करती है। विकास की इस अवधारणा ने अपनी सर्वाधिक व्यापक सैद्धांतिक अभिव्यक्ति अमर्त्य सेन के 'स्वतंत्रता के रूप में विकास' के सूत्रीकरण में पाई है (अमर्त्य सेन, *डिवैलॅपमैण्ट ऐज़ फ़्रीडम,* ऑक्सफोर्ड, 1999)।

30.3.9 विकास पर अमर्त्य सेन के विचार

सेन के अनुसार, स्वतंत्रता के विस्तार को विकास के *प्राथमिक उद्देश्य* के साथ-साथ *मुख्य लक्ष्य* के रूप में भी देखा जाता है। विकास, इसीलिए, अस्वतंत्रता के मुख्य स्रोतों को दूर किए जाने की अपेक्षा करता है, यथा ग़रीबी, तानाशाही, निकृष्ट आर्थिक अवसर, योजनाबद्ध सामाजिक, वंचित दशा, जन-सुविधाओं की उपेक्षा, असहिष्णुता अथवा दमनकारी राज्यों की अतिसक्रियता। अमर्त्य सेन भी इस विचार का विरोध करते हैं कि राजनीतिक स्वतंत्रताओं को तब तक स्थापित रखना चाहिए, जब तक कि सामाजिक-आर्थिक विकास अस्तित्व में न आ जाए। उनका तर्क है कि राजनीतिक स्वतंत्रताएँ तथा ऐसी ही अन्य स्वतंत्रताएँ, जैसे रोग और अज्ञानता से मुक्ति, विकास के अनिवार्य घटक हैं। सेन 'सहायक स्वतंत्रताओं' की पाँच श्रेणियों की पहचान करते हैं जो विकास को मिलकर बढ़ावा देती हैं। ये 'सहायक स्वतंत्रताएँ' हैं : (a) ***राजनीतिक स्वतंत्रताएँ*** : जो सरकार बनाने और उसकी नीतियों को प्रभावित करने भागीदारी हेतु लोगों को सक्षम करती हैं। (b) ***आर्थिक स्वतंत्रताएँ*** : जिनमें संसाधन प्रयोग हेतु लोगों के लिए अवसर होते हैं। (c) ***सामाजिक स्वतंत्रताएँ*** : जो स्वास्थ्य रक्षा एवं शिक्षा हेतु समाज के भीतर उन व्यवस्थाओं की ओर संकेत करती हैं, जो

राजनीतिक व आर्थिक जीवन में भागीदारी हेतु सहायता करती हैं। (d) ***पारदर्शिता संबंधी गारण्टियाँ*** : इन गारण्टियों का संकेत जन-आस्था की शर्तों की ओर हैं, जो सार्वजनिक मामलों में पारदर्शिता के माध्यम से प्राप्त की जाती हैं। (e) ***शरण्य सुरक्षा*** : यह सहायक स्वतंत्रता सामाजिक सुरक्षा एवं निर्भयता प्रदान करती है जो लोगों को ग़रीब और अभावग्रस्त होने से बचाती है।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) विकास सिद्धांत के भीतर ऐसे कुछ आलोचनात्मक सूत्रों पर चर्चा करें, जिन्होंने विकास को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्वतंत्रता के रूप में विकास की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

30.4 सारांश

विकास की अवधारणा ने सामन्तवाद के अवसान और आधुनिक पूँजीवादी समाजों के उदय के संदर्भ में जन्म लिया। पूँजीवाद के उदय ने विज्ञान, प्रगति, आर्थिक विकास, उत्पादन, लाभ, व्यापार स्वतंत्रता आदि पर ज़ोर देते हुए, ऐसी भौतिक दशाएँ प्रदान कीं, जिनमें रहकर विकास की अवधारणा ने जन्म लिया। युग की बुद्धिवादी परम्परा, ज्ञानोदय परम्परा, ने तर्क-क्षमता रखने, और युक्तियुक्त निर्णय लेने की क्षमता रखने वाले के रूप में व्यक्ति की अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया। भौतिक प्रगति और लाभार्जन पर ज़ोर दिए जाने से सामन्तिक संबंध समाप्त हो गए। साथ ही, बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति, जो आत्म-निर्णयन में सक्षम हो, संबंधी धारणा वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता हेतु एक सचेत राजनीतिक संघर्ष के जन्म लेने में सहायक बन गयी।

जोर्ज लारेन लिखते हैं कि विकास की अवधारणा न सिर्फ़ पूँजीवाद के क्रमविकास से गहरे जुड़ी है, पूँजीवाद के प्रत्येक चरण को विकास विषयक धारणाओं की एक विशेष शृंखला रखने वाले के रूप में देखा जा सकता है। वह पूँजीवाद को 1700 ईस्वी से तीन प्रमुख अवस्थाओं में विकसित हुआ मानते हैं और हर एक दौर के लिए विकास के सम्बद्ध सिद्धांतों

की पहचान करते हैं : प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद का युग जिसकी पहचान है – नव-औद्योगिक बुर्जुआ वर्गों के संघर्ष, भी वो वक्त था जब पूँजीवाद ब्रिटेन में जन्म लेकर दुनिया भर में बाज़ारों अथवा उपनिवेशों की तलाश में पैर पसार रहा था। ऐडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो जैसे सैद्धांतिक राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन के विशुद्ध रूप बतौर पूँजीवाद में आस्था जतायी। मार्क्स एवं एंजिल ने, तथापि, पूँजीवाद को उत्पादक का प्राकृतिक और विशुद्ध रूप मानने से इंकार किया और पूँजीवाद में आंतरिक विरोधों के विकास में उत्पादन के एक अधिक उन्नत तरीके द्वारा उसकी समाप्ति और प्रतिस्थापन की संभावना देखी।

पूँजीवाद के दूसरे दौर, यथा साम्राज्यवाद के युग (1860 - 1945) में उत्पादन के एक प्रभावशाली तरीके के रूप में पूँजीवाद की मज़बूत मोर्चाबंदी देखी गई। विकास के नव-पारम्परिक सिद्धांतों ने, जो इस आश्वासन के साथ काम कर रहा था कि उत्पादन के पूँजीवादी तरीके की जड़ें मज़बूत हैं और उसके पास संतुलन कायम रखने हेतु अन्तर्जात क्षमता भी है, विकास को भगवान् भरोसे छोड़ दिया। रोज़ा लक्ज़मबर्ग, बुखारिन, हिल्फ़र्दिंग एवं लेनिन जैसे मार्क्सवादियों ने तथापि, लिखा कि जब तक औपनिवेशिक बंधन नहीं टूटा, उपनिवेशित देशों का विकास अवरुद्ध ही रहा।

उत्तर-पूँजीवाद के दौर की पहचान थी – आधुनिक उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन और 1966 तक इस काल की विशेषता रही – आर्थिक विस्तार एवं बढ़ते लाभ तथा एक अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया, जिसने अनेक 'नए राष्ट्रों' को जन्म दिया। ये 'नव राष्ट्र' एक विकास-पथ पर चल पड़े ताकि स्वयं को सशक्त राष्ट्र बना सकें।

रॉस्ट एवं ओस्लित जैसे आधुनिकतावादी सिद्धांतियों ने विकास की प्रक्रिया को एक परिवर्तन के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया, जो कि सर्वप्रथम विकसित समाजों में आता है, और अन्य इसी प्रकार के परिवर्तन प्रतिमानों को अपनाते हैं। इस दौर में मार्क्सवादी सिद्धांत औपनिवेशिक बंधनों के टूटने के बाद भी नए-नए आज़ाद हुए देशों में अल्पविकास हेतु कारणों को समझने और स्पष्ट करने हेतु जुड़े रहे।

लैटिन अमेरिकी देशों में पराधीनता सिद्धांतों ने राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की मुक्तिदायक भूमिका के विषय में संशयवाद व्यक्त किया। उन्होंने सुझाया कि विकासशील देशों में आधुनिकीकरण और उद्योगीकरण ने एक नए प्रकार की पराधीनता को बढ़ावा दिया है। असमान विनिमय (Unequal Exchange) संबंधी समीर अमीन एवं ए. एम्मानुएल के सिद्धांत तथा आई. वार्लस्टीन के विश्व व्यवस्था (World System) सिद्धांत ने इस पराधीनता एवं पदानुक्रम के विशिष्ट प्राधारों की रूपरेखा प्रस्तुत की, जिसने आधुनिक विश्व व्यवस्था का लक्षण-वर्णन किया।

साठ के दशक से, तथापि, विकास सिद्धांतियों के महत्त्वपूर्ण सूत्र विकास को आर्थिक प्रगति के साथ-साथ इस विचार के साथ जोड़े जाने पर भी सवाल उठाने लगे कि इस प्रगति का केवल एक ही रास्ता है, जो कि पश्चिमी देशों द्वारा पहले ही पार किया जा चुका है। साठ के दशक में आर्थिक प्रगति के रूप में विकास की एक संकीर्ण परिभाषा के साथ संशयवाद ने स्वयं को 'सामाजिक विकास' दृष्टिकोण के रूप में व्यक्त करवाया, जो कि स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा, धन-सम्पत्ति के पुनर्वितरण तथा राजनीतिक निर्णयन् में जन-भागीदारी के साथ जुड़ गया। 'मौलिक मानवीय आवश्यकताओं' ने इसी प्रकार विकास के अर्थ को पुनर्परिभाषित किए जाने पर ज़ोर दिया ताकि इसमें ग़रीबी, असमानता और बेरोज़गारी को घटाना शामिल किया जा सके।

4 दिसम्बर 1986 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अंगीकृत **विकास के अधिकार** ने एक समतावादी विश्व व्यवस्था हेतु दावों के लिए आधार प्रदान किया। विकास के अधिकार में

आत्म-निर्णयन् का अधिकार एवं संप्रभुता का अधिकार आते हैं और यह नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी अधिकारों को समान रूप से महत्त्वपूर्ण बताता है और कहता है कि इनको समान रूप से ही प्रोत्साहन और संरक्षण दिया जाना चाहिए। यह इस अनुमान को भी सामने लाता है कि अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा विकास के प्रति सहायक स्थितियों को लागू करने के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं। अमर्त्य सेन के स्वतंत्रता के रूप में विकास संबंधी स्पष्टोच्चारण ने विकास में स्वतंत्रता की 'संघटक' के साथ-साथ 'सहायक' भूमिका पर भी ज़ोर दिया। राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक अवसर, सामाजिक सुरक्षा, आस्था तथा सार्वजनिक मामलों व सामाजिक अवसरों में स्वतंत्रताओं के रूप में लिया जाता है जो कि विकास को बढ़ावा देने वाली दशाएँ प्रदान करने में सहायक हैं। इस बात पर भी गौ़र किया जा सकता है कि इन स्वतंत्रताओं में भी विकास के यथेष्ठ लक्षण शामिल हैं।

30.5 कुछ उपयोगी संदर्भ

बक्शी, उपेन्द्र, 'डैवैलॅपमैण्ट ऑफ़ राइट टु डैवे़लपमैण्ट', जैन्यू सिमोनाइदे (सं.) कृत *ह्यूमन राइट्स : न्यू डायमैन्शन्ज़ एण्ड चैलेन्जेस* में, ऐशगेट, डार्टमाउथ, 1998

बूआन्दे, यूऐफ, *ह्यूमन राइट्स एण्ड कॅम्पैरिटिव पॉलिक्सि*, एल्डरशॉट, डार्टमाउथ, 1997, पृ. 3. 'वार्ड जेनेरेशन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स, पृ. 47-65

एस्तेवा, गुस्तावो, 'डैवैलॅपमैण्ट', वुल्फगांग सैश (सं.), कृत द *डैवे़लॅपमैण्ट डिक्शनरी* में, ज़ैड बुक्स, लण्दन, 1992

लारेन, जोर्ज, *थिअरीज़ ऑफ डैवैलॅपमैण्ट*, पॉलिटि, कैम्ब्रिज, 1989

लैफ़िटवच, आद्रें, *स्टेट्स ऑफ़ डैवैलॅपमैण्ट,* पॉलिटि, कैम्ब्रिज, 2000

सैश, वुल्फ गांग, 'इण्ट्रोडक्शन', वुल्फ़गाग सैश (सं.) कृत द *डैवैलॅपमैण्ट डिक्शनरी* में, ज़ैड बुक्स, लण्दन, 1992

30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 30.1

बोध प्रश्न 2

1) देखें उप-भाग 30.2.1 एवं 30.2.2

2) देखें भाग 30.2

3) देखें उप-भाग 30.2.6

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 30.3

2) देखें उप-भाग 30.3.9